आज कल की सोच में : क्या इस्लाम ठीक उतरता है?

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादकः मु० र० आबिद

इस बारे में रौशनी डालने के लिए पहले यह समझना ज़रूरी है कि आज-कल की सोच में क्या-क्या ख़ास है? इसके बाद यह देखा जा सकता है कि इस्लाम और उसकी शिक्षाएँ उसके साथ कितनी ठीक बैठती हैं।

यह याद रखना चाहिए कि हमारी बात में 'आज की सोच' पर फ़ोकस किया गया है, आज के काम पर नहीं क्योंकि बहुत मुमकिन है कि किसी एक या किसी गुट का काम खुद उसकी सोच से मेल न खाता हो। ऐसे में वह काम कोई वज़न नहीं रखता इसलिए कि वह अक्सर बाहरी दबाव का या अन्दर के मन की चाह से होता है मगर सोच, दिमाग़ के फ़ैसले या ज़मीर (अन्तःकरण/Conscience) की माँग होती है जो अक्सर बेलाग होती है। इसलिए वह भरोसे वाला होता है। बल्कि उसी के काम के ख़िलाफ़ सनद या Proof बनता है जैसे एक चोर चोरी को अच्छी बात नहीं समझता है। उसी तरह झूठा झूठ को, वैसे ही धोखेबाज़ धोखेबाज़ी को। नहीं तो चोर, झूठा या धोखेबाज़ कहे जाने से बुरा न माने। अब यहाँ चोरी या झूठ या धोखेबाज़ी वह तो उसका काम है और यह चोर झूठे या धोखेबाज़ को बुरा समझना उसकी बेलाग सोच है जिसे हम ज़मीर का फ़ैसला कह सकते हैं। एक मानी हुई हैसियत वाले की ज़बान में यह उसके अन्दर की आवाज़ खुद वह अदालत है जिसके कठहरे में वह मुजरिम की सूरत में खड़ा होता है।

इस से समझ लीजिए कि हमें दुनिया के 'आज के काम' से इस समय बहस नहीं है बल्कि 'आज-कल की सोच' से बहस है और उसके लेहाज़ से इस्लाम के उचित होने, ठीक उतरने को देखना है।

इसके लिए पहले हमें 'आज कल की सोच' की ख़ास-ख़ास बातों को देखना होगा। फिर इसके सिलसिले में इस्लाम के बुनियादी उसूल सिद्धान्त और शिक्षाओं पर मुख़्तसर तरह से नज़र डाली जायेगी क्योंकि विस्तार के लिए ये मौक़ा और वक़्त ठीक नहीं है।

आज कल की सोच की सबसे बड़ी ख़ास बात यह है कि दुनिया पहले वालों की लकीर के फ़क़ीर होने से आज़ाद हो रही है। वह पुरानी रीतियों पर अन्धाधुन्ध चलने पर तैयार नहीं बल्कि आज़ाद नज़र से देखने और आज़ाद दिमाग़ से सोचने पर झुकाव रखती है। हो सकता है काम करने में इस सिलसिले में बीच के रास्ते से अलग पैर न उठें या माडर्न होने की चाह से हदों से बढ़ जाएं या लकीर के फ़क़ीर होने की ग़लत भावना के उलटने (Reaction) में बदलाव की चाहत सिर्फ़ शौक़ बनकर रह जाए जिसमें सही समझ का हाथ न हो। मगर मैं पहले कह चुका हूँ कि हमको काम के सही या ग़लत होने से बहस नहीं बल्कि असल सोच के ढंग से बहस है तो इसमें कोई शक नहीं कि बाप-दादा के रास्ते पर अन्धे चलना बहुत हद तक सोच समझ के रास्ते में रुकावट हुई है। सामने की बात है कि आदमी की ऊँचाई बड़ाई समझ और ज्ञान से जुड़ी है इसलिए ऐसे अन्धे चलने की भावना और दिमाग़ी गुलामी आदमी की ऊँचाई के ख़िलाफ़ है।

अब इस लेहाज़ से हम देखते हैं तो इस्लाम वह

अकेला मज़हब नज़र आता है जिसने आँख और अक़्ल के दरवाज़ों को खोला है, सोच समझ का न्यौता दिया है, आँख बन्द कर बड़ों के ढर्रे पर चले जाने की कड़े से कड़े शब्दों में धिक्कार की है।

वह कभी मुख़्तसर बात करके आदमी की ऊँचाई-बड़ाई को बार-बार कोड़ा मारता है कि ''अ'-फ़ला या'क़िलून'' (क्या ये समझ से काम न लेंगे), ''अ'फ़ला य-त-फ़क्करून'' (क्या ये सोच विचार न करेंगे) ''अ'फ़ला य-त-ज़क्करून'' (क्या ये सबक़ न लेंगे) और कभी-कभी कड़े लहजे में यूँ फिटकार लगाता है: 'उनके पास दिल दिमाग़ हैं जिनसे वे सोचते नहीं, उनके पास आँखें हैं जिनसे वे देखते नहीं, उनके पास कान हैं जिनसे वे सुनते नहीं ये चौपायों जैसे हैं बल्कि उनसे भी गिरे।''

यहाँ क़ुरआन में 'अज़ल' (ज़्यादा गिरे) इसलिए कहा गया है कि उन चौपायों के पास सोचने समझने की ताक़त है ही नहीं तो वे अपनी इस कमी पर फिटकार के क़ाबिल नहीं हैं और ये अभागे आदमी ये सब ताक़तें रखते हुए उन से काम नहीं लेते इसलिए ये उलाहने के साथ फिटकार के क़ाबिल हैं।

फिर इस आज़ाद सोच-समझ के ख़िलाफ़ जो जज़्बा होता है यानी वही पहले वालों की लकीर पर अन्धे चलन उसकी कड़े शब्दों में धिक्कार की। इस तरह कि उनकी बात दोहराते हुए ये तर्क दलील लायी गयी। हमने अपने बाप-दादाओं को एक रास्ते पर चलते देखा है और हम उसी रास्ते पर चले जाएंगे फिर इस दलील के नीचपन पर यह कह के रौशनी डाली कि ''क्या चाहे उनके बाप-दादाओं ने समझ से काम न लिया हो और न सही रास्ता अपनाया हो'' मतलब ये है कि आदमी की ऊँचाई-बड़ाई की माँग ये है कि वह ठीक, सही और समझी हुई है या नहीं, जो बात ठीक हो, सूझबूझ की हो उसे अपनाये और जो इस रास्ते पर न हों वह चाहे अपने बाप-दादा हों उन्हें समझे कि वे ग़लत रास्ते पर थे और हमें उस रास्ते पर नहीं चलना चाहिए।

ज़माने का झुकाव भी यह है इसलिए इस्लाम की बात बिल्कुल आजकल की सोच से मेल खाती है।

दूसरी ख़ास बात आजकल की सोच में नेचर की पढ़ने समझने का चाव है जो साइंस की तरक़्क़ियों का असल सोता है।

इसके लेहाज़ से जब हम देखते हैं तो क़ुरआन ने अपने मूल-सिद्धान्तों, उसूल यानी ख़ुदा के पहचानने के लिए बार-बार दुनिया और नेचर को समझने पर ज़ोर दिया है। कहा गया है: ''क्या उन्होंने आसमान धरती के संसार और जो जो चीज़ें अल्लाह ने पैदा की हैं उन पर ध्यान नहीं दिया''

वह छोटे बच्चों और आम जनता के दिमाग़ के इस ख़ास गुण को देखते हुए कि वह खुले फ़ार्मूलों, उसूलों का असर नहीं लेता जो छोटी-मोटी मिसालों पर ध्यान दिलाने से असर लेता है। इस बारे में खुले विस्तार से काम लेते हुए इस तरह बेख़बर दिमाग़ को मानो झिंजोड़-झिंजोड़ कर जगाया है।

निश्चय आसमान-ज़मीन का पैदा करना और रात दिन का आना जाना और जहाज़ों में जो समन्दर में लोगों के फ़ायदे की चीज़ें लिए हुए चालू हैं और जो अल्लाह आसमान से पानी बरसाता है, तो उस से धरती को उसके मरने के बाद जिला देना और जो उसने धरती में हर तरह के चलने फिरने वाले जानवर फैलाए हैं और हवाओं के चलने और उस बादल में जो आसमान और ज़मीन के किसी के क़ाबू नियन्त्रण में बन्दी रहता है, निशानियाँ हैं, उनके लिए जो समझ से काम लें।''

बेशक क़ुरआन का फ़ोकस संसार की Study से बस इतना जुड़ा है कि उसे वह इस रास्ते उनके पैदा करने वाले सिरजनहार ख़ुदा की ओर मन को ले जाना चाहता है। मगर दुनिया के बड़े पैमाने पर इस स्टडी में जुट जाना जो इस ज़माने की ख़ास बात है, उसे उस मक़सद से जो क़ुरआन का फ़ोकस है, बेशक पास करने का साधन है। इसीलिए जानकार लोग महसूस करते हैं कि एक ज़माना था जब साइंटिस्ट लोग ख़ुदा के होने को नहीं मानते थे, नास्तिक होते थे मगर अब साइंस की तरक़्क़ी के साथ उनमें ख़ुदा के होने का विश्वास बढ़ता जाता है। ऐसे में ये समझने के काफ़ी कारण हैं कि जितनी साइंस तरक़्क़ी करती जाएगी उतनी उस बात के पास आएगी जिसके लिए क़ुरआन ने नेचर की स्टडी को

कहा है।

तीसरी ख़ास बात आजकल की सोच की समाजी और नागरिक पहलुओं में बेचैनी और अलग-अलग कल्चरों के तजुरबों में लगना है। सरमायादारी/पूँजीवाद (Capitalism) के बुरे नतीजों से घबराकर कम्युनिज़्म की ओर झुकाव, अब कम्युनिज़्म के भी बे सुहावने नतीजों और असर का आँखों के सामने आ जाना। यह हद के पीछे रहना या हद से बढ़ जाने के बीच आदमी की दौड़, उन तजुरबों के फेल होने के साथ अपने आप उस बीच के रास्ते के क़रीब लाने का कारण है जिसे इस्लाम सामने लाता है। जहाँ आदमी की अकेली जतन का मोल भी ख़त्म नहीं होता और आदमी धन का पुजारी भी नहीं बनता जहाँ पैसा कमाने की सराहना है मगर पैसा जमा करना बुरा है, जहाँ ग़रीब की मदद करने के साथ एहसान धरना की सोच जुर्म और कर्तव्य (Duty) निबाहने के साथ ख़ुदा की मर्ज़ी चाहने की नियत ज़रूरी शर्त है।

यह इस्लाम के वित्तीय (Economic) सिस्टम की ख़ास बात है जिसका फ़ैलाव थोड़े समय में नहीं हो सकता।

चौथी ख़ास बात आजकल आदमी जाति के लोगों के बीच भेदभाव दूर करने की ओर झुकाव और बराबरी व भाईचारा पैदा करने की चाहत है। इस बराबरी और भाईचारे का पूरा सबक़ इस्लाम ने दिया है। इसलिए संसार की आज की सोच का झुकाव उसे चाहे अनचाहे तरह सही इस्लामी सिस्टम के क़रीब ला रही है।

✦✦✦